International Journal of Sanskrit Research 2022; 8(1): 78-80

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2022; 8(1): 78-80
© 2022 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 07-10-2021
Accepted: 20-12-2021

मोहन लाल
शोधार्थी, संस्कृत विभाग, आर्य कन्या पी०जी० कॉलिज, हापुड, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
मोहन लाल
शोधार्थी, संस्कृत विभाग, आर्य कन्या पी०जी० कॉलिज, हापुड, उत्तर प्रदेश, भारत

विभिन्न आचार्यों के मतों में रस विवेचन

मोहन लाल

प्रस्तावना

संस्कृत में भारत का साहित्य ही नहीं अपितु विश्व का साहित्य भी समाहित है। संस्कृत साहित्य में अनेक काव्यों एवं महाकाव्यों की रचना हुई है। संस्कृत साहित्य में 'रस' का महत्वपूर्ण स्थान है। संस्कृत में षड् सम्प्रदाय है उनमें से एक ''रस सम्प्रदाय'' है।

रस सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिए तथा काव्यों का रसात्मक प्रतिपादन करने के लिए महर्षि वाल्मीकि द्वार कृत आर्ष काव्य 'रामायण' का उदाहरण प्रायः दिया जाता है। काव्य रचना में रस को महत्वपूर्ण माना जाता है। एक समय महर्षि वाल्मीकि जी तसमा नदी के तट पर प्रातः स्नान करने के लिए जाते है। वहाँ देखते है कि एक व्याध ने काम से मोहित क्रौञ्च पक्षी को मार डाला। उसकी प्रेयसी क्रौञ्ची उसके लिए विलाप करती है। इस घटना को देखकर वाल्मीकि जी के हृदय में करूण रस उत्पन्न हो जाता है, और मुख से श्लोक निकलता है।

मा निषाद् प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चं मिथुनादेकमवधी काममोहितम्।। (रामायण 1/2/15)

तत्पश्चात् श्लोक की अर्थ गम्भीरता ने उन्हें और अधिक सोचने को विवश कर दिया, और महर्षि वाल्मीकि ने अपने आश्रम में पहुँचकर रामायण महाकाव्य (आर्ष काव्य) की रचना प्रारम्भ कर दी।

काव्यशास्त्र के इतिहास में रस सिद्धान्त की चर्चा सर्वप्रथम भरतमुनि ने की है। यद्यपि भरतमुनि ने रसों का निरूपण रूपकों के लिए ही किया था, किन्तु बाद में उन्हें काव्य एवं रूपको दोनों में ही समानरूप में लक्षित किया जाने लगा। आचार्य भरतमुनि का समय द्वितीय शताब्दी ई० पू० का है। इन्होंने नाट्यशास्त्र ग्रन्थ की रचना की है। नाट्यशास्त्र में छठें एवं सातवें अध्याय में रस की चर्चा की गई है। लोक में रति आदि स्थायी भावों के जो कारण कार्य एवं सहकारी है। वे यदि नाट्य और काव्य में प्रयुक्त होते है। तो वे विभाव, अनुभाव, और व्याभिचारिभाव कहे जाते है। इन्हीं विभावादि से व्यक्त वह स्थायी भाव 'रस' कहा जाता है। आचार्य भरतमुनि ने अपने शब्दों में रस की परिकल्पना इस प्रकार दी है।

विभावानुभावव्याभिचारिभावसंयोगाद् रसनिष्पत्ति।
(नाट्यशास्त्र)

अर्थात् विभाव, अनुभाव, तथा व्यभिचारिभाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। आचार्य भरतमुनि के अनुसार रसों की संख्या आठ मानी गयी है।

श्रृंगार हास्य करूण रौद्र वीर भ्यानकाः।
वीभत्साद्भुत संजौचेत्यष्यै नाट्येरसाः स्मृताः।।
(नाट्यशास्त्र) 6/15

आचार्य भरतमुनि ने कहा है–जिस प्रकार के भोज्य पदार्थों से युक्त अनेक व्यञजन खाने पर जो स्वाद उत्पन्न होता है। उसी प्रकार विभिन्न भावों से युक्त स्थायीभाव रसास्वाद एवं हर्ष उत्पन्न करते है। इस प्रकार रस वह है। जो हृदय को आनन्द का आस्वादन करा सके। इस विषय में भट्टोलोल्लटादि आचार्यों के कुछ प्रमुख रस विषयक सिद्धान्त है। जिनका विवरण निम्न प्रकार है।

1. भट्टलोल्लट सम्मत रस–सिद्धान्त (उत्पत्तिवाद)

आचार्य भट्टलोल्लट सम्मत रससूत्र विषयक सिद्धान्त उत्पत्तिवाद के नाम से जाता है। आचार्य भट्टलोल्लट की गणना मीमांसक आचार्यों में की जाती है। इनके मत में विभाव, अनुभाव तथा संचारिभाव के योग से अनुकार्य राम सीतादि में रस की उत्पत्ति होती है। विभाव सीतादि मुख्य रूप से रस को उत्पन्न करते हैं। अनुभाव, उत्पन्न रस का बोध कराता है। इस प्रकार स्थायीभावों के साथ विभावों का उत्पाद्य–उत्पादक भाव, अनुभावों का गम्य गमकभाव तथा सञ्चारी भावों का पोष्य–पोषक भाव सम्बन्ध होता है। भरतसूत्रस्थ ''संयोग'' शब्द से भी यही तीन अर्थ अभिप्रेत है। आचार्य मम्मट के शब्दों में भट्टलोल्लोट सम्मत यह रस सिद्धान्त इस प्रकार है।

''विभावैर्ललनोद्यानादिभिरालम्बनोददीपनकारणैः''
(काव्य प्रकाश)

2. शंकुक सम्मत रस–सिद्धान्त (अनुमित्तिवाद)

'अनुमित्तिवाद' के प्रवर्तक आचार्य शंकुक सम्मत अनुमित्तिवाद रससूत्र विषय नैयायिक सिद्धान्त को संक्षिप्त रूप से इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है–नट कृत्रिम रूप से कटाक्षादि अनुभाव का प्रकाशन करता है। लेकिन उसके उस बनावटी सौन्दर्य के कारण उसमें वास्तविकता जैसी प्रतीति होती है। इसी बनावटी अनुभावादि को देखकर नट में वास्तव में स्थित न होने पर भी सामाजिक उसमें रस का अनुमान कर लेता है तथा अपनी वासना के वशीभूत होकर उस अनुमीयमान रस का आस्वादन करता है। इनके मत को आचार्य मम्मट ने निम्नलिखित रूप में प्रयुक्त किया है–

1. ''राम एवावयम् अयमेव राम इति''–सम्यक् प्रतीति।
2. ''राम रामोऽयमित्यौत्तरकालिकं बाधे रामोऽयमिति''–मिथ्याप्रतीति।
3. ''राम स्याद्वा न वाङ्यमिति''–संशयात्मक प्रतीति।
4. राम सदृशोङ्यामिति – सादृशात्मक प्रतीति।

इन चारों प्रकार की प्रतीतियों से भिन्न ''चित्रतुरग न्याय'' से होने वाली पंचम् प्रकार की प्रतीति से ग्राह्य नट में –

''सेयं माङ्गेषु सुधारसच्छटा सुपूरकर्पूरशलालिका दृशोः।
मनोरथश्रीर्मनसः शरीरिणी प्राणेश्वरी लोचनगोचरतां गता।।
(काव्यप्रकाश)

इत्यादि काव्यों के अनुशीलन से तथा शिक्षा के अभ्यास से सम्पादित किए हुए अपने कार्य से नट के ही द्वारा प्रकाशित किए जाने वाले कृत्रिम होने पर भी कृत्रिम न समझे जाने वाले कारण, कार्य व सहकारियों के सहयोग से अनुमीययान होने पर भी वस्तु सौन्दर्य के कारण तथा आस्वाद का विषय होने के कारण स्थायीरूप से सम्भाव्यमान रति आदि स्थायीभाव वहाँ न रहते हुए भी सामाजिकों के संस्कारों द्वारा आस्वाद किया जाता हुआ ''रस'' कहलाता है।

3. भट्टनायक सम्मत रस–सिद्धान्त (भुक्तिवाद)

भुक्तिवाद के प्रवर्तक सांख्यामतानुयायी आचार्य भट्टनायक है। इनके मत में वास्तविक रसानुभूति सामाजिकों को होती है। इन्होंने–''न प्रतीयते, नोत्पायते, तथा नाभिव्यंज्यते' के माध्यम से क्रमशः शंकुक, लोल्लट तथा अभिनवगुप्त आचार्य के मतों का खण्डन करके ''भुक्तिवाद'' सिद्धान्त की व्याख्या की है। इनके मत में विभाव, अनुभाव, तथा व्याभिचारिभाव के द्वारा भोज्य भोजक भावस्वरूप सम्बन्ध से रस की निष्पत्ति (भुक्ति) होती है। अर्थात् सामाजिकों द्वारा रस का भोग (आस्वाद) किया जाता है। इस प्रकार इन्होंने अभिद्या तथा लक्षणा के अतिरिक्त भावकत्व एवं भोजकत्व नामक दो नवीन व्यापारों की कल्पना की है। काव्य के श्रवण तथा नाटक के दर्शन से पहले उसका अर्थ समझा जाता है। फिर भावकत्व व्यापार द्वारा भावित किया जाता है। उसके बाद सत्वोद्रेक से प्रकाश रूप आनन्द का अनुभव किया जाता है। यही वेद्यान्तर–सम्पर्क शून्य रसानुभाव है।

4. अभिनवगुप्त सम्मत रस–सिद्धान्त (अभिव्यक्तिवाद)

रस सूत्र के सर्वश्रेष्ठ व्याख्याता ''अभिव्यक्तिवाद'' के प्रवर्तक आचार्य अभिनवगुप्त एक अलंकारिक आचार्य है। इनके सम्पूर्ण विवेचन का केन्द्र बिन्दू सामाजिक रसानुभूति है। सारांश रूप में रससूत्र विषय इनका सिद्धान्त निम्नलिखित है। सामाजिक के हृदय में ख्याति स्थायी भाव बीजरूप में स्थित होता है। जो काव्य के सीतादि के रूप में आलम्बन, विभाव, उद्यानादि रूप उद्दीपन विभाव, कटाक्षादि रूप अनुभाव तथा चापल्यादि व्याभिचारिभाव के साथ व्यष्टिशः संयोग रूप काव्य की तीसरी शब्दशक्ति व्यंजना से अभिव्यक्त होकर श्रृंगारादि अलौकि तथा चमत्कारिक रस कहलाता है।

प्रत्येक व्यक्ति के अन्तःकरण में लौकिक अनुभाव से उद्भूत रति आदि भावनाएँ पहले से ही निरन्तर विद्यमान होती है। अभिनय प्रदर्शन या काव्य श्रवण के समय उनके द्वारा हमें ऐसे विभाव तथा अनुभाव आदि का अनुभव होने लगता है। जो अन्तःकरण के अनुकूल होने के कारण बहुत सुन्दर प्रतीत होता है। इस समय हमारी इत्यादि सहज भावनाएँ उद्भूत हो जाती है। इस प्रकार सामाजिकों के लिए कोमल हृदय मे एक प्रकार की रसानुभूति होने लगती है। इसी आनन्दानुभूति को ''रस'' कहते हैं।

काव्य ही आनन्दानुभूति का साधन है, और आनन्दानुभूति रसास्वादन का मूल है, और रसास्वादन से ही आनन्द की उत्पत्ति होती है। इस लिए ''मम्मट'' ने काव्य के प्रयोजन में भी ''सद्यः परिनिर्वृत्ये'' को स्पष्ट करते हुए लिखा ''सकल प्रयोजन मौलिकभूत समन्तरमेव रसास्वाद समुदगत विगलित वेद्यान्तरण आनन्दम्''।।

इस समस्त प्रयोजनों में मुख्य, काव्य सुनने या पढ़ने के बाद तुरन्त ही रस के आस्वादन से समुन्नत और सब विषयों के परिज्ञान से शून्य परम आनन्द ही रस है। आचार्य मम्मट ने रस की परिभाषा इस प्रकार दी है।

विभाव अनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्याभिचारिणः।
व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः।।
(काव्यप्रकाश 4/27–28)

लोक में रति आदि स्थायी भावों के जो कारण कार्य और सहकारी है। वे यदि नाट्य और काव्य में प्रयुक्त होते है। तो वे विभाव, अनुभाव और व्याभिचारिभाव कहे जाते है। इन्हीं विभावादि से व्यक्त वह ''स्थायीभाव रस'' कहा जाता है।

आचार्य विश्वनाथ ने तो 'रस' को काव्य की आत्मा माना है।

''वाक्यं रसात्मक काव्यम्''

अर्थात् रस काव्य की आत्मा है। जो वाक्य रस युक्त है वह काव्य है। काव्य में रस का महत्वपूर्ण स्थान है। ''आचार्य भरतमुनि'' ने कहा है। काव्य में रस के बिना कोई अर्थ प्रवर्तित नहीं होता है।

''अग्निपुरण'' का कथन है कि न भाव से हीन रस होता है, और न ही रस से रहित भाव होते है। भाव ही रसों को भावित करते है। ''आनन्दवर्धन'' ने ध्वनि को काव्यात्मा बताते हुए ध्वनि को तीन भागों में बाँटा है। 1. वस्तुध्वनि 2. अलंकार ध्वनि 3. रस ध्वनि। आनन्दवर्धन ने रस को अभिव्यंग्य मानकर ही उसका ध्वनि के रूप में प्रतिपादन किया है।

''पण्डितजगन्नाथ'' ने रस के विषय में रस के विषय में अभिनवगुप्त का ही समर्थन किया है। ''कैशवमिश्र'' ने काव्य में रस को आत्म स्थानीय माना है।

निष्कर्ष

संस्कृत साहित्य में षड् सम्प्रदायों में से रस सम्प्रदाय का महत्वपूर्ण स्थान है। रस की आनन्दात्मकता तथा प्रधानता के कारण काव्यशास्त्र की रचना में प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक सभी आचार्यों ने रस को काव्य की आत्मा माना है। न केवल रस सम्प्रदायों के आचार्य अपितु समस्त सम्प्रदायों के आचार्य कहीं न कहीं रस को काव्यात्मा स्वीकार कर लेते है। कालिदास, भवभूति आदि ने भी रस में ही सहृदयों की तन्मन्यता को स्वीकारा है। इस प्रकार हम कह सकते है कि काव्यशास्त्र में रस का महत्वपूर्ण स्थान है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. रामायण बालकाण्ड – 1/2/15
2. नाट्यशास्त्र अ० – 6/37
3. अग्निपुराण – 319/12
4. ध्वन्यालोक – 2/3
5. काव्यमीमांसा पृष्ठ (13–14)
6. ध्वन्यालोक लोचन टीका पृष्ठ–31
7. व्यक्तिविवेक पृष्ठ–22
8. अलंकार सर्वस्व पृष्ठ–12
9. काव्यप्रकाश – 4/27–28
10. साहित्यदर्पण – 3/1
11. दशरूपकम् – 4/35
12. सरस्वतीकण्ठाभरण – 4/1
13. रसविलासवृत्ति – 1/1
14. रसगंगाधर पृष्ठ – 99
15. अलंकारशेखर – 2/1